परम सन्त तुलसी साहब

–प्रो० जनक पुरी एवं श्रीवीरेन्द्र सेठी

संतों के विषय में सही और पूरी जानकारी कम ही प्राप्त होती है। तुलसी साहब के जीवन का वृत्तान्त तो और भी दुर्लभ है। उनके प्रारम्भिक जीवन का विवरण अस्पष्ट और धुंधला है। यद्यपि वे उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रहे, फिर भी उनके मूल नाम, उनके पिता और परिवार के बारे में इतिहास मौन है।

तुलसी साहब के प्रारम्भिक जीवन के विषय में जो विभिन्न विवरण मिलते हैं, वे संक्षेप में यहाँ दिये जाते हैं।

बेल्वेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित तुलसी साहब के 'रत्न सागर' (प्रथम प्रकाशन १९०९ ई०) में दिये गये जीवन-चरित्र के अनुसार तुलसी साहब का जन्म एक उच्च ब्राह्मण परिवार में हुआ था। किशोर अवस्था से ही आपको संसार के प्रति अरुचि थी। छोटी उम्र में ही सब कुछ त्याग दिया और अन्त में जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर रहने लगे। इस वृत्तान्त में तुलसी साहब के असली नाम, उनके माता-पिता के नाम तथा उनके जन्मस्थान के विषय में कोई उल्लेख नहीं है।

इसी प्रेस ने सन् १९११ में तुलसी साहब का प्रसिद्ध ग्रंथ 'घट रामायण' प्रकाशित किया। इसके प्रारम्भ में तुलसी साहब के जीवन चरित्र के विषय में और प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके अनुसार तुलसी साहब का जन्म सन् १७६३ में हुआ और १८४३ में ८० वर्ष की आयु में आपने शरीर छोड़ा। वे पुना के राजा [१] के सबसे बड़े पुत्र थे। वे जाति के ब्राह्मण थे तथा उनका नाम श्यामराव था। उनकी इच्छा के विरुद्ध छोटी उम्र में ही उनके पिता ने उनका विवाह कर दिया। उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मीबाई था और इस विवाह से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उनके पिता की रुचि अध्यात्म और प्रभु-भक्ति की ओर थी। वे अपनी गद्दी त्यागकर श्यामराव को राज्य देना चाहते थे ताकि बाकी जीवन भक्ति में बितायें। परन्तु श्यामराम खुद भी संसार की ओर से उदासीन थे और राज्य-वैभव की जिन्दगी के प्रति उनमें कोई झुकाव न था। अपने राज्याभिषेक के एक दिन पहले ही वे अपने महल से भाग निकले। काफी तलाश के बाद भी जब श्यामराव का पता न चला तो उनके छोटे भाई को राजा बनाया गया।

श्यामराव कई वर्षों तक जंगलों, पहाड़ों, गाँवों और शहरों में घूमते रहने के बाद हाथरस में आये। हाथरस को आपने अपना स्थायी निवास बनाया और अपना बाकी जीवन यहीं बिताया। यहीं आप तुलसी साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आचार्य क्षितिजमोहन सेन, डॉ० राजकुमार वर्मा, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तथा अन्य आधुनिक विद्वानों ने ऊपर दिये दो वृत्तान्तों में से एक को अपनाया है। [२]

---

१. 'राजा' शब्द वास्तव में पेशवा के लिए प्रयोग किया गया है। पेशवा, प्रारम्भ में, शिवाजी की राज्य-व्यवस्था में प्रमुख शासकीय अधिकारी थे। धीरे-धीरे, कुछ समय बाद, वे मराठा साम्राज्य के वास्तविक अध्यक्ष बन गये। उन्होंने पूना को अपनी राजधानी बनाया, जबकि असली राजानाम के शासक रह गये और उनका निवास-स्थान सतारा ही रहा।

२. बेल्वेडियर प्रेस के सम्पादकों ने इन दोनों वृत्तान्तों में से कौन-सा सही है, इसका निर्णय करने का कोई प्रयास नहीं किया है, बल्कि 'घटरामायण' तथा 'रत्न सागर' के सभी संस्करणों में दोनों वृत्तान्त अभी तक प्रकाशित किये जा रहे हैं।

महाराष्ट्र के एक प्रमुख इतिहासवेत्ता श्रीविट्ठल रा० ठकार ने हाल ही में पेशवा-वंश के दस्तावेजों का अध्ययन करके तुलसी साहब के विषय में कुछ खोज की है, जो इस बात की पुष्टि करती है कि तुलसी साहब पेशवा परिवार से संबंधित थे। यद्यपि श्रीठकार की खोज अभी पूरी नहीं हुई है, फिर भी उनका कथन है कि इस बात के पक्ष में समुचित आधार हैं कि तुलसी साहब वास्तव में पेशवा बाजीराव के प्रथम दौहित्र (बाजीराव प्रथम की कन्या के पुत्र) अमृत राव थे। उनका जन्म १७६३-६४ में हुआ था और जब वे तीन-चार वर्ष के थे, तब रघुनाथ राव ने उन्हें गोद ले लिया था। इस प्रकार अमृतराव बाजीराव द्वितीय के बड़े भाई थे। शुरू से ही अमृतराव स्वभाव से गम्भीर, विवेकशील और निष्कपट थे। राजनैतिक षड्यंत्रों से उन्हें घृणा थी। पेशवा दरबार के राजनैतिक दाव-पेंचों से ऊबकर वे सन् १८०४ में पूना छोड़कर बनारस आ गये और अपना जीवन मालिक की भजन-बंदगी में लगा दिया। १८०८-९ में आप हाथरस आये और यहाँ अपने अंतिम समय १८४३ तक रहे। परन्तु यह स्पष्ट पता नहीं लगता कि अमृतराव कब और कैसे तुलसी साहब के नाम से पुकारे जाने लगे।

ऊपर दिये वृत्तान्तों पर गौर करने से यह पता चलता है कि इन सभी में कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें काफी हद तक सही माना जा सकता है। संक्षेप में यें इस प्रकार है :

तुलसी साहब ने उच्च तथा कुलीन परिवार में जन्म लिया था और वे पेशवा के राजवंश में से थे।

उनका जन्म अट्ठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति के लिए सांसारिक ऐश्वर्यों को त्यागने की ओर शुरू से उनका झुकाव था।

वे अपने जन्म-स्थान से भागे और कोई पहचान न ले, इसलिए अपने को छिपाये रखा। हो सकता है कि अपने को अज्ञात रखने के लिए ही उन्होंने अपना नाम श्यामराव रख लिया हो।

उन्होंने बहुत भ्रमण और अनेक यात्राएँ कीं और अन्त में जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर को अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया।

यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी साहब दक्षिण भारत से आये थे; क्योंकि लोग उन्हें 'दक्खिनी बाबा' के नाम से पुकारते थे।

इस बात का कोई पता नहीं लगता कि तुलसी साहब को कब सतगुरु मिले और न यह ही पता लगता है कि सुरत-शब्दयोग के मार्ग में वे कब दीक्षित हुए। जब वे पूना में राजकुमार थे, उस समय या बाद में जबकि सब कुछ त्यागकर उन्होंने एक भ्रमणशील जीवन अपनाया।

तुलसी साहब ने अपनी रचनाओं में सतगुरु के प्रति अपनी श्रद्धा तो प्रकट की है, पर उनके नाम का उल्लेख नहीं किया है। एक मराठीभाषी विद्वान् ने एक पत्रिका में लिखा है, "तुलसी साहब को उनके गुरु ने हाथरस शहर में दीक्षा दी और अपने गुरु के आदेश के अनुसार उन्होंने बहुत अभ्यास किया है।" [१]

सभी युगों में, सब सन्तों ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए वक्त के सतगुरु की आवश्यकता पर जोर दिया है। सन्तमत में सतगुरु की बहुत जरूरत है। सतगुरु के बिना आन्तरिक रूहानी यात्रा संभव नहीं है।

तुलसी साहब ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर गुरु की आवश्यकता पर जोर दिया है। आप बड़े

१. पं० पाण्डुरंग शर्मा, 'विविध विज्ञान विस्तार' नामक मराठी पत्रिका के जून, १९३१ के अंक में, पृ० २०२.

स्पष्ट शब्दों में 'रत्न सागर' में लिखते हैं :

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सभन की को गिने ॥
सतगुरु बिना भव माहिं भटके, अटक नहिं गुरु की गही ।
भृंगी भवन नहिं कीट पावे, उलटि भृंगी ना भई ॥

(रत्न सागर, पृ० ७)

स्वयं तुलसी साहब ने भी गुरु धारण किया था, इसके संकेत उनके कई शब्दों में मिलते हैं। अपने सतगुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए आप फरमाते हैं :

सतगुरु अगम अपार, सार समझि तुलसी कियो ।
दया दीन निरधार, मोहिं निकार बाहिर लियो ॥
सतगुरु संत दयाल, करि निहाल मो को दियो ।
सुरति सिंध सुधार, सार पार जद लखि पर्‌यो ॥

(घट रामायण, भाग १, पृ० ८)

इसी प्रकार तुलसी साहब सतगुरु की कृपा से अपने अन्दर हुए परिवर्तन का वर्णन एक सुन्दर दृष्टांत के द्वारा करते हैं :

मैं लोहा जड़ कीट समाना। गुरु पारस संग कनक कहाना ॥
तुलसी सतगुरु पारस कीन्हा। लोहा सुगम अगम लखि लीन्हा ॥

(घट रामायण, भाग २, पृ० १९१)

धीरे-धीरे तुलसी साहब के पास जिज्ञासुओं और शिष्यों के बड़ी संख्या में समुदाय आने लगे। ब्राह्मण से शूद्र तक सभी जाति के लोग, गरीब से लेकर अमीर तक सभी स्तर के लोग, विद्वान् और अनपढ़ किसान उनके सत्संग में आने लगे। तुलसी साहब सत्संग के लिए हाथरस से बाहर भी जाया करते थे। उत्तर प्रदेश के ग्रामों और शहरों में वे प्राय: जाया करते थे। उनके शिष्यों में आगरा के सेठ दिलवाली सिंह, उनकी पत्नी महामाया, उनकी माता, सास तथा बहन भी थीं। ये सभी तुलसी साहब के प्रेमी शिष्य थे तथा तुलसी साहब कई बार आगरा आते-जाते रहते थे। आगरा में आप पन्नी गली में सेठ दिलवाली सिंह के घर में ठहरते थे तथा वहीं सत्संग करते थे।

सन् १८१७ में अक्टूबर महीना था। वर्षा के बाद सेठ दिलवाली सिंह के यहाँ रेशमी, जरी के कपड़े, कमख्वाब व कीमती ऊनी कपड़े, शाल आदि छत पर धूप में सुखाये जा रहे थे। एक दिन पहले ही वर्षा हुई थी। इससे गलियों में कीचड़ था। तुलसी साहब के पैर कीचड़ में सने हुए थे। तुलसी साहब को आते देख सेठ दिलवाली सिंह की माताजी और अन्य महिलाएँ बहुत आनन्दित हुईं। उन्होंने मत्था टेका और विनती की कि वे उन्हीं कपड़ों पर विराजें। तुलसी साहब मिट्टी और कीचड़ में सने पैरों के साथ उन बहुमूल्य वस्त्रों पर चलकर बैठ गये। सतगुरु के प्रेम और भक्ति में मग्न, घर की महिलाओं का खयाल कपड़ों पर मिट्टी लगने की ओर नहीं गया। उनकी विनती स्वीकार करके तुलसी साहब ने उन वस्त्रों पर चरण रखे। यह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। तुलसी साहब ने कहा, "अरे, मैंने तो तुम्हारे कीमती कपड़े मिट्टी से बिगाड़ दिये।" इस पर सेठ दिलवाली सिंह की माता ने प्रेम और ममता के साथ उत्तर दिया, "नहीं, साहबजी ![1]

---

१. तुलसी साहब के शिष्य उन्हें 'साहिब' तथा 'साहिबजी' कहकर पुकारते थे।

कुछ भी नहीं बिगड़ा है। आपने तो हमें अपने दर्शन से कृतार्थ कर दिया। सब कुछ आपका ही है, इन कपड़ों में हमारा क्या है? उनकी भक्ति-भावना को देखकर तुलसी साहब ने कहा, "मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। जो भी चाहो, माँग लो, मैं खुशी से दे दूँगा।"

इस पर सेठ दिलवाली सिंह की माताजी ने अर्ज किया, "आपकी दया-मेहर से हमारे पास सब कुछ है, किसी चीज की जरूरत नहीं है। परन्तु.." अपनी पुत्रवधू की ओर संकेत करते हुए उन्होंने विनती की, "महामाया को कुछ चाहिए।" सेठ दिलवाली सिंह की धर्मपत्नी महामाया को कोई पुत्र नहीं था। तुलसी साहब ने दया-मेहर की उसी मौज में फरमाया, "हाँ, इसे पुत्र प्राप्त होगा, परन्तु उसे साधारण मनुष्य मत समझना।"

अगस्त, १८१८ में सेठ दिलवाली सिंह और महामाया को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम शिवदयाल सिंह रखा गया, जो आगे जाकर परम सन्त के रूप में प्रकट हुए और राधास्वामीजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तुलसी साहब विनम्र और सहिष्णु थे। उनका व्यवहार सभी के प्रति प्रेमपूर्ण था। जहाँ अपने विचारों को व्यक्त करने में वे दृढ़ और स्पष्ट थे, वहीं अपने व्यवहार में सौम्य और मृदु थे। कई बार विद्वान्, पंडित और पुरोहित अथवा मठाधीश उनसे बहस करने आते थे। कभी-कभी तो वे उनसे लड़ने के विचार से आते और कठोर वचनों का प्रयोग करते। परन्तु तुलसी साहब हमेशा उठकर उनका स्वागत करते, झुककर प्रणाम करते और पधारकर उनकी कुटिया को पवित्र करने के लिए उनका आभार मानते। वे उन्हें अपने से ऊँचे आसन पर बिठाते और उनके आक्रोशपूर्ण कठोर वचनों को बड़े धैर्य से सुनते। घट रामायण में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनसे प्रकट होता है कि तुलसी साहब किस प्रकार अपनी नम्रता तथा अपने सौम्य और प्रेमपूर्ण व्यवहार के द्वारा अपने विरोधियों का हृदय जीत लेते थे।

अपने शिष्यों के प्रेम और भक्ति का तुलसी साहब बहुत आदर करते थे। एक बार वे आगरा गये और पन्नी गली में स्वामीजी महाराज के यहाँ पहुँचे। यह सुनकर कि सतगुरु शहर में आये हैं, कुछ महिलाएँ जो कि पास ही रहती थीं, दर्शन के लिए दौड़ी आयीं। उनमें से कई घर के कामकाज में लगी हुई थीं और जैसी थीं, वैसी ही स्वामीजी के घर की ओर दौड़ पड़ीं। आकर उन्होंने बड़ी भक्ति के साथ तुलसी साहब को मत्था टेका और उनके आसपास बैठ गयीं। तुलसी साहब के एक शिष्य ने जब देखा कि उनके कपड़ों में से दुर्गंध आ रही है तो उनसे कहा कि वे दूर हटकर बैठें; क्योंकि उनके कपड़ों में से पसीने की बदबू आ रही है। तुलसी साहब ने उसे रोकते हुए कहा, "भाई, इन्हें बैठे रहने दो। तुम्हें इनके प्रेम की खुशबू का पता नहीं। तुम नहीं जानते कि किस भक्ति-भावना के साथ ये यहाँ आयी हैं। तुम्हें इनमें से बदबू आती है, मुझे नहीं आती।"

शेख तकी नामक एक फकीर हज से लौट रहा था। संयोग से उसने अपना तम्बू तुलसी साहब की कुटिया के सामने लगाया। इस प्रकार उसे तुलसी साहब से मुलाकात और बातचीत का मौका मिला। परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग के बारे में अपने वार्तालाप में तुलसी साहब ने शेख तकी को समझाया कि मनुष्य का शरीर ही असली मस्जिद है और इसी में खुदा रहता है। इंसान के हाथों से बनायी हुई ईंट-पत्थरों की मस्जिद में वह नहीं रहता। उनसे मिलने का रास्ता भी इंसान के शरीर में ही है। वह रास्ता तीसरी आँख अथवा 'नुक्ताए सवैदा' में से शुरू होता है। आँखों के इस केन्द्र में सारी सृष्टि का भेद छिपा हुआ है। 'कुन', शब्द या दिव्य

धुन खुदा के महल के दरवाजे की कुंजी है, लेकिन यह केवल पूरे सतगुरु से ही मिल सकती है।

दिल का हुजरा साफ कर, जाना के आने के लिये।
ध्यान गैरों का उठा, उसके बिठाने के लिये॥
चश्मे दिल से देख यहाँ जो जो तमाशे हो रहे।
दिल सितां क्या क्या हैं तेरे दिल सताने के लिये॥
एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसको बिठाने के लिये॥
नकली मन्दिर मस्जिदों में जाय सद अफसोस है।
कुदरती मस्जिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥
कुदरती काबे की तू मेहराब में सुन गौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है दिलवर पै जाने के लिये॥
मुरशिदे कामिल से मिल सिद्क औ सबूरी से तकी।
जो तुझे देगा फहम शहरग के पाने के लिये॥
गोश बातिन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाह हो अकबर पै जाने के लिये॥
यह सदा 'तुलसी' की है आमिल अमल कर ध्यान दे।
कुनकुराँ में है लिखा अल्लाहू अकबर के लिये॥

सभी सन्तों की शिक्षा अपने मूल रूप में एक ही है। वे सभी 'परमात्मा की उस बादशाहत' का जिक्र करते हैं, जो कि हमारे अन्दर में है। वे उसकी प्राप्ति का मार्ग बताते हैं और वहाँ जाने की विधि सिखाते हैं। वे अन्य सन्तों से भिन्न कोई शिक्षा देने का दावा नहीं करते। परन्तु उनके जाने के बाद उनके शिष्य धीरे-धीरे उनकी असली शिक्षा को भूलकर बाहरमुखी कर्मों, रिवाजों आदि में उलझ जाते हैं। उनके निर्मल रूहानी सन्देश को वे बाहरी परिपाटियों और कर्मकाण्ड का रूप दे देते हैं। असली गुर (भेद) को खोकर वे छिलके समेटने में लग जाते हैं।

तुलसी साहब के संसार में आने से पहले पिछले सन्तों के अनुयायी अपने सतगुरु के मूल संदेशों को भूलकर पंथ बनाये बैठे थे। कबीर, दादू, पलटू, दरिया आदि सन्तों के अनुयायी कबीर-पंथी, दादू-पंथी, पलटू-पंथी, दरिया-पंथी के नाम अपना चुके थे।

तुलसी साहब ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे कोई नया मार्ग नहीं बतला रहे हैं, बल्कि वही शिक्षा दे रहे हैं जो कबीर साहब, नानक साहब, दादू साहब तथा अन्य सन्तों की है। अपनी इस बात की पुष्टि में तुलसी साहब अपने 'घट रामायण' में कबीर, रविदास, दादू तथा अन्य सन्तों के शब्दों के उद्धरण देते हैं। तुलसी साहब ने पहली बार सभी सन्तों की शिक्षा के लिए 'सन्त-मत' वाक्य का प्रयोग किया और इस प्रकार विभिन्न सन्तों की शिक्षा की एकता और समानता को प्रकट करने का प्रयास किया।

तुलसी साहब की रचनाओं में शब्दावली, रत्नसागर, घटरामायण तथा एक छोटी अपूर्ण पुस्तिका पद्य-सागर है। शब्दावली में तुलसी साहब की फुटकर रचनाओं, पदों, शब्दों आदि का संग्रह है। इनमें से अधिकांश पद संगीत के विभिन्न रागों पर आधारित हैं और सन्तमत के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालते हैं। 'घट रामायण'

और 'रत्न-सागर' कथोपकथन की शैली में लिखी गई है। इसमें तुलसी साहब शिष्यों और जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करते हैं। 'घट रामायण' में तुलसी साहब के समय में प्रचलित विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों का विवेचन तथा सन्तमत की दृष्टि से उनकी व्याख्या है। रत्न-सागर के विषय हैं–सृष्टि की रचना, स्वर्ग और नरक, काल, मन, मृत्यु, सन्तों की शिक्षा, सन्तों की दया, अन्दर के भेद आदि। तुलसी साहब की सभी रचनाओं के समान ही रत्न सागर में भी पूरे सतगुरु की महिमा, सतगुरु की आवश्यकता और उनके सत्संग के लाभ पर काफी लिखा गया है। मृत्यु के समय सन्त किस प्रकार अपने शिष्य की आत्मा की सँभाल करते हैं, रत्न-सागर में इसका भी स्पष्ट वर्णन किया गया है।

तुलसी साहब की रचनाओं में संस्कृत, अरबी और फारसी भाषा के शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है। तुलसी साहब के समय में दक्षिण के कई राज्यों में फारसी राजकीय भाषा थी, अतएव पेशवा परिवार से संबंधित होने के कारण तुलसी साहब को फारसी का अच्छा ज्ञान रहा होगा। परन्तु इसके साथ ही आपकी रचनाओं में ब्रज, अवधी, मराठी, राजस्थानी (मारवाड़ी), गुजराती, पंजाबी और मैथिली शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि अन्य सन्तों की तरह तुलसी साहब भी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, बिहार आदि प्रदेशों में बराबर यात्राएँ करते रहे होंगे। परन्तु आपका स्थायी निवास-स्थान हाथरस नगर की सीमा पर स्थित जोगिया ग्राम में एक कुटिया ही रहा। यहाँ आप अपने अन्तिम समय तक रहे तथा सन् १८४३ में अस्सी वर्ष की आयु में धुरधाम को प्रयाण कर गये।

✶

सन्त तुलसी साहब की वाणी

गगन धार गंगा बहै, कहैं सन्त सुजाना हो॥
चढ़ि सूरति सरवर गई, ससि सूर ठिकाना हो।
बिरले गुरमुख पाइया, जिन शब्द पिछाना हो॥१॥
सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्रान पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो॥२॥
विमल विमल वाणी उठै, अदबूद असमाना हो।
निरमल बास निवास में, कर कर कोइ जाना हो॥३॥
तुलसी तलब तलबी करै, नित सुरति निसाना हो।
अंड अलख लखिहैं सोई, चढ़ि करि धरि ध्याना हो॥४॥